मोहे शाम रंग दई दे

ज्योति*

हाल ही में ब्रिटिश राजघराने की एक शाही दंपत्ति ने एक इंटरव्यू में अपने दर्द उजागर किए। पत्नी ने बताया कि जब वे अपने पहले बच्चे से गर्भवती थीं तब उनके इस बच्चे की त्वचा के रंग को लेकर बातें की जाती थीं कि बच्चे का रंग काला होगा या गोरा! क्योंकि शाही खानदान का मुख्य अंग बनी यह स्त्री अफ्रीकी मूल माँ की संतान हैं और इनका रंग गहरा है, इसलिए ब्रिटेन के राजघराने में अपनी त्वचा की शुद्धता को लेकर चिंता की गई। ब्रिटिश शाही राजघराने की त्वचा के रंग को लेकर यह सोच है तो आम लोगों की क्या होगी! आज सन् 2021 है। रंग को लेकर इस तरह का भेदभाव अचानक या एकाएक तैयार नहीं हुआ है। इस तरह के भेदभावों का एक लंबा इतिहास और परंपरा है। यह घटना बताती है कि तमाम आधुनिक और तकनीकी शिक्षा व सोच के बाद भी इंसानों के विकसित दिमाग किस तरह भेदभाव को अपने भीतर करीने से सहेज कर रखते हैं।

विविधताओं की जगह भारत, एक ऐसा देश है जो आज भी कई तरह की दिक्कतों से गुज़र रहा है। यहाँ इतनी अधिक जैविक विभिन्नताएँ हैं कि किसी भी वैज्ञानिक को आश्चर्य करने की वजह मिल जाएगी। पर क्या वास्तव में भारत अपनी इस विविधताओं पर गुमान करता है? भारतीय समाज में जब आप उतरेंगे तब इस सवाल से जुड़े जवाब आपको निराश कर देंगे। कई बार यहाँ एक दूसरे से भिन्न होने की ख़ासियत का उत्सव नहीं मनाया जाता। रंग के आधार पर भेदभाव इसका एक उदाहरण है। भारतीय महिला क्रिकेट टीम की एक प्रसिद्ध खिलाड़ी झूलन गोस्वामी पर फिल्म बनाई जा रही है। जो अदाकारा उनका चरित्र निभा रही हैं वे गोरी हैं। झूलन गोस्वामी काले रंग की स्वामिनी हैं। जब अदाकारा ने फिल्म से जुड़ी अपनी कुछ तस्वीरों को सोशल मीडिया मंच पर साझा किया तब लोगों ने उन्हें ट्रोल कर दिया। कारण, अदाकारा को काले रंग का दिखाने के लिए उनके चेहरे को काला लुक दिया गया था। जब झूलन गोस्वामी और अदाकारा की तस्वीरों को एक साथ देखते हैं तब झूलन बिल्कुल प्राकृतिक रंग की नज़र आ रही हैं जबकि अदाकारा हास्यास्पद चेहरे के साथ उपस्थित होती हैं।

यह कोई एक घटना नहीं है। इस तरह की बहुत सी घटनाएँ हमारे समाज का हिस्सा हैं जहाँ कई लोगों को उनके त्वचा के रंग के आधार पर अपमानित किया जाता है। रंग के आधार पर लोगों को कमतर महसूस करवाया जाता है। गोरे और काले व्यक्ति के बीच इतना बड़ा अंतर बना दिया गया है कि गहरे रंग के व्यक्ति अपने व्यक्तित्व में इस रंग को ख़ामी की तरह देखते हैं। गोरे वर्ण का न होना एक नकारात्मक शारीरिक स्थिति मानी जाती है। जबकि बात यह है कि कुदरत की संरचना में हर रंग के व्यक्तियों का महत्त्व है। जिस तरह से हमारे इर्द-गिर्द हर तरह के रंग अपनी छटा के साथ बिखर कर खूबसूरत दुनिया बनाते हैं ठीक उसी तरह काले, गोरे और साँवले रंग के व्यक्ति मनुष्य समाज में खूबसूरत विविधता का निर्माण करते हैं।

हिंदी सिनेमा के क्षेत्र में भी त्वचा के रंग को लेकर समय-समय पर फिल्में बनाई गई हैं। एक पहलू यह भी है कि हिंदी सिनेमा ने ही नायिकाओं के सौंदर्य के प्रतिमानों को गोरे रंग से जोड़कर जमाए भी हैं। धूप में निकला न करो रूप की रानी... गोरा रंग काला न पड़ जाए, गोरे रंग पे ना इतना गुमान कर... गोरा रंग दो दिन में ढल जाएगा, ये काली-काली आँखें... ये गोरे-गोरे गाल, गोरी तेरा गाँव बड़ा प्यारा... मैं तो गया मारा आके यहाँ रे, हम काले हैं तो क्या हुआ दिलवाले हैं, चिट्टियाँ कलाईयां वे... ओ बेबी मेरी वाइट कलाईयां वे, काला चश्मा जंचदा ए... गोरे मुखड़े पे, इस तरह के अन्य हिंदी गीत और भी हैं जो अपने आप में भयानक भेदभाव लेकर चलते हैं। हैरत की बात यह है कि इन गीतों को भारतीय समाज में खूब सुना जाता है।

* शोधार्थी, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

इतना ही नहीं, हिंदी सिनेमा की अनुपम फिल्म 'मदर इंडिया' (1957) में 'बिरजू' का किरदार काले रंग की त्वचा से सना हुआ दिखाया गया है। बिरजू का मिजाज गुस्सैल, बिगड़ैल, लड़ाई झगड़े वाला दिखाया गया है। जबकि उसका भाई 'रामू' जिसका रंग साफ़ है वह शांत मिजाज का है। उसका स्वभाव सौम्य है। इसके अलावा अपने समय की बेहद सफल और लोकप्रिय फिल्म 'मि. इंडिया' (1987) के एक गीत में दिक्कत देखी जा सकती है। इस फिल्म के हर गीत बहुत ही अधिक लोकप्रिय हैं और अब भी यहाँ-वहाँ सुनाई दे जाते हैं। सबसे अधिक लोकप्रिय गीत 'हवा हवाई' है। इसका फिल्मांकन दिवंगत अदाकारा श्री देवी पर किया गया था। गीत के कुछ दृश्यों में जब वे नाचती हैं तब उनके पीछे 'एक्स्ट्रा' कलाकारों की त्वचा का रंग इतना काला कर दिया जाता है जिससे फिल्म की अदाकारा पर अधिक ध्यान जाता है। गीत का अंतिम सीक्वेंस तो और भी परेशान करता है। यह सब आम दर्शकों पर गहरी छाप छोड़ता है। लोगों के मन में यह बात घर करने लगती है कि गोरा रंग सच में अच्छाई और सुंदरता का प्रतीक है। नायिकाओं का रंग गोरा ही होना चाहिए।

लेकिन कुछ ऐसी फिल्में भी बनाई गई हैं जो वास्तव में ईमानदारी से समाज में फैली समस्याओं को उठाती रही हैं। मीना कुमारी और धर्मेंद्र अभिनीत फिल्म 'मैं भी लड़की हूँ' (1964) त्वचा के रंग से जुड़ी समाज-व्यवहार की समस्या को उठाती है। स्त्री के त्वचा के रंग और उस पर आधारित सुंदरता के विषय को, सीरत के बजाय सूरत को अधिक महत्त्व प्रदान करने के चलन को और स्त्री-शिक्षा जैसे विषयों को फिल्म बखूबी दिखाती है। फिल्म में नायिका की त्वचा के रंग के लिए उसे, काली, अमावस्या की रात, कलूटी, चुड़ैल, मनहूस, भूतनी आदि संज्ञाओं के साथ पुकारा जाता है। नायिका इस बात से दुखी है। वह बहुत से दृश्यों में अपने रंग को लेकर दुःख उठाती है और रोती है। वह यह सवाल भी करती है कि काले कृष्ण देव रूप में स्वीकार्य और पूजनीय हैं पर वह समाज द्वारा धिक्कारी जा रही है, क्योंकि उसका रंग काला है।

नायिका ने यह स्वीकार भी कर लिया है कि यदि लोग उसे मनहूस मानते हैं तो इसके पीछे उसका काला रंग है। यहाँ इस बिंदु पर वह लंबी प्रक्रिया दिखती है जहाँ एक स्त्री को इस तरह से सांस्कृतिक वातावरण में तैयारी दी जाती है कि वह उन बातों को भी स्वीकार कर लेती है जो उसके साथ अन्याय के रूप में की जा रही हैं। फिल्म की नायिका अबला नारी से पढ़ी-लिखी और आत्मविश्वास रखने वाली नारी के रूप में बदलती हुई दिखती है। फिल्म की शुरुआत में ही कला, खूबसूरती और चरित्र जैसे विषय पर कुछ संवादों को पेश किया गया है। फिल्म शुरुआत से ही सूरत और सीरत की बहस को लेकर साथ चलती है।

बहुत से कलाकारों अथवा विद्वानों ने कला को सुंदरता से जोड़ दिया है। जबकि कला महज सुंदरता का प्रदर्शन नहीं है। फिल्म का नायक चित्रकार है जो गोरे रंग की स्त्रियों के चित्र बनाता है और उसकी चाहत रखता है। चित्रकला (**painting art**) को बहुत से लोग सुंदर छवियों का निर्माण भर मानते हैं जबकि यह उससे बढ़कर है। प्रसिद्ध डच पेंटर और 'स्टारी नाईट' पेंटिंग के चित्रकार विन्सेंट वैन गोग की एक और प्रसिद्ध पेंटिंग 'पटेटो इटर्स' (आलू खाने वाले) सुंदरता के पैमाने तोड़कर उन गरीब किसानों के दिन ढलने के बाद के उस पल को उजागर करती है जब खेतों से थककर लौटा परिवार कॉफ़ी और आलू को एक साथ बैठकर खाता है। इस चित्र में श्रम की थकावट है। चित्र की सुंदरता उसमें श्रम के चित्रण में है। वास्तव में कला अपने अलग-अलग पक्षों के माध्यम से व्यक्ति के अंदर कुछ बुनियादी और रचनात्मक परिवर्तन करने की ईमानदार कोशिश करती है। इसके अतिरिक्त किसी कलाकार की अभिव्यक्ति तो शामिल है ही। उपर्युक्त फिल्म का नायक एक कलाकार होने के बाद भी त्वचा के रंग को लेकर सहज नहीं हो पाता। हालाँकि फिल्म के अंत में उसका हृदय परिवर्तन होते हुए दिखाया गया है। इस फिल्म में अंत में यही बात उभर कर आती है कि मन की खूबसूरती ही सबसे अच्छी सच्चाई है।

अख़बारों में शादी के छपने वाले विज्ञापन त्वचा और जाति के भेदभाव को सुबह चाय की मेज पर कई सालों से रखते आ रहे हैं। यह इतना सहज और स्वीकार्य है कि किसी को यह गहरा भेदभाव बुरा नहीं लगता। शादी दो व्यक्तियों के बीच की समझदारी का मामला है। वे अपने जीवन को एक-दूसरे के साथ बिताने का आपसी फैसला करते हैं। इसमें दोनों के बीच प्रेम और आपसी समझदारी की बात अधिक महत्वपूर्ण है। साथ ही एक दूसरे को पसंद करना भी इसमें शामिल है। स्नेह या प्रेम के धागे का कोई रंग नहीं होता। किसी माँ का बच्चा यदि गोरा नहीं है तो वह इस बात के लिए अपने शिशु से नफरत या भेदभाव नहीं करती कि

बच्चा रंग में काला है। बल्कि ममता का पूरा आवरण तैयार होता है जहाँ, बच्चे के रोने को भी माँ समझ जाती है।

फेयर एंड लवली, हिंदुस्तान यूनिलीवर का एक बड़ी माँग वाला उत्पाद है। यह इतना मशहूर है कि इसके क्रीम पाउच या ट्यूब भारत के छोटे से छोटे घर या गाँव-देहात में मिल जाते हैं। जनवरी 2018 में हिंदू अखबार में ख़बर छपी थी कि हिंदुस्तान यूनिलीवर के छः उत्पादों (प्रोडक्ट्स) ने सलाना 2000 करोड़ की रिकॉर्ड बिक्री दर्ज़ की है। जी हाँ, उसमें फेयर एंड लवली भी एक उत्पाद था। लेकिन ठीक इसके दो साल बाद जनवरी 2020 में अंग्रेज़ी पत्रिका आउटलुक (**Outlook**) ने वेबसाइट पर ख़बर छापी है कि नॉर्वे ने फेयर एंड लवली को बैन कर दिया। उनके मुताबिक इसमें हानिकारक तत्त्व पाए गए हैं। कंपनी ने कहा कि वह इस मसले को देखेगी और हो सकता है वे नकली उत्पाद हों। कंपनियों का यही खेल है। वास्तव में यह एक भयानक मज़ाक है जो मासूम जनता के साथ खेला जा रहा है। यदि कंपनियों से यह पूछ लिया जाए कि गोरेपन की ज़रूरत ही क्या है तो ये जवाब देंगे कि हम किसी पर क्रीम का इस्तेमाल करने के लिए दबाव नहीं डालते। लोग अच्छा दिखना चाहते हैं। यह उनका निजी फैसला है, वगैरह वगैरह। वास्तव में कंपनी का यह विश्वास है कि अच्छा दिखने का मतलब गोरा होना है। पिछले साल पुलिस द्वारा एक काले अमेरिकी की निर्मम हत्या के बाद बहुत बड़े जन आन्दोलन हुए। दुनियाभर में नस्लवाद से जुड़े भेदभाव पर नए सिरे से बहस शुरू हुई। इसका प्रभाव यह भी हुआ कि 'फेयर एंड लवली' का नाम बदलकर अब 'ग्लो एंड लवली' रखा जा रहा है। पर फिर भी मुद्दा वही है। आम जन जो उपभोक्ता है, उन्हें क्रीम के माध्यम से गोरा रंग बेचा जा रहा है।

इस क्रीम ने 1975 में भारत में दस्तक दी थी। जब कॉलोनी बनाने की प्रथा ख़त्म हुई तब तक कुछ शोध हो चुके थे। कंपनियों ने इंसान की असुरक्षा या इंफेरियोरिटी की भावना को अच्छी तरह से समझा। स्त्रियों के 'सिम्बल ऑफ ब्यूटी' के दर्जे को और बढ़ाया जिसे लिटरेचर या शिल्पकला के संदर्भ में भारत में समझा जा सकता है। लाभ कमाने के लिए दिमाग़ की चाभी खोजनी ही पड़ती है। वही हुआ भी। नयी आर्थिक नीति ने साम्राज्यवाद को फिर से वह जगह बनाकर और लगभग तोहफे में दी जो इससे पहले देशों को गुलाम बनाकर तैयार होती थी। 90 के दशक और उसके बाद विश्व सुंदरी जैसी बिना सिर पैर की प्रतियोगिताओं ने सौंदर्य के पैमाने जमाने शुरू कर दिए। इसे इतना प्रतिष्ठित और प्रचारित किया जाता है कि भारत समेत दुनियाभर का एक बड़ा युवा वर्ग इन प्रतियोगिताओं से न सिर्फ प्रभावित होता है बल्कि इन प्रतियोगिताओं में शामिल लोगों जैसा दिखना भी चाहता है। आज हम सभी साक्षी हैं कि फिल्म जगत के बड़े से बड़े स्त्री-पुरुष अदाकार कैसे गोरा होना है, कैसे महकना है, कैसे दिखना आदि से जुड़े उत्पाद और विज्ञापनों में दिखाई देते हैं। क्योंकि भारत में सिनेमा कलाकारों का अधिक प्रभाव है इसलिए बहुत से लोग उनकी बात को मानते हुए उत्पाद खरीदते भी हैं।

प्राचीन, मध्य और आधुनिक समय में स्त्रियों के शारीरिक सौन्दर्य में उनके गोरे रंग को लेकर बहुत-सा साहित्य और व्यवहार दिखाई पड़ता है। हिन्दू मिथकों में स्त्री देवियाँ अधिकांशतः गोरे वर्ण की हैं। उनका रंग उज्जवल और बिल्कुल चंद्रमा के समान माना गया है। राजा रवि वर्मा की चित्रकारी में भी देवियों ने गोरा रंग ही पाया है। लेकिन बंगाल के मानुष जन में माँ काली देवी का देह काला है। काला रंग यहाँ सौंदर्य के पक्ष में नहीं है। अपितु देवी का क्रोध कुछ ऐसा है कि उनका रंग क्रोध में काला हो जाता है। क्रोध पूजनीय है पर रंग काला? समानता जैसे शब्द के संदर्भ में कई विचार पिरोए जाते हैं। ईश्वर शब्द में ही कहीं देह और मुख नहीं है। स्वर की शक्ति में ही ईश्वर है। किताबों और फिल्मों में यह बताया भी जाता रहा है कि ईश्वर 'कलर ब्लाइंड' होता है। उसे अपनी तमाम रचनाओं में कोई रंग नज़र नहीं आता। ईश्वर रंग के मामले में अँधा होता है।

त्वचा के रंग के आधार पर किया जाने वाला भेदभाव किसी भी व्यक्ति की गरिमा से खिलवाड़ और उसके साथ की जाने वाली हिंसा है। ज़रूरत मानसिकता बदलने की है। सुंदरता के पैमाने को बदलने की भी है। कभी पेड़ों के तनों के बारे में पत्तियां शिकायत नहीं करतीं कि उनका रंग इतना गहरा क्यों है। स्वयं पेड़ों में कितनी विभिन्नताएँ होती हैं। वे छोटे-बड़े, आड़े-टेढ़े, पतले-मोटे होते हैं। ठीक इसी तरह से मनुष्य भी है। मनुष्यों में शारीरिक भिन्नताएँ हैं जिसका किसी समाज को संतुलित उत्सव मनाना चाहिए। एक स्वस्थ समाज में किसी भी तरह के भेदभावों की कोई जगह नहीं होनी चाहिए।

□□□□